226 क लेख – अन्ना बनाम रामदेव

226 ख लेख – क्या वास्तव में वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था पूंजीपतियों, बुद्धिजीवियों राजनेताओं का मिला जुला षड़यंत्र है?

226 ग प्रश्न– कपिल सिब्बल के प्रश्न और उत्तर –

घ प्रश्न– कार्यालयिन प्रश्नो के उत्तर

च ग्राम स्वराज्य लोक स्वराज्य

अन्ना बनाम रामदेव

पिछले दो तीन माह में व्यवस्था परिवर्तन के नाम पर हमने दो आंदोलन देखे। दोनों आंदोलन बिल्कुल अलग–अलग हैं। लोकतंत्र दो वर्गों को मिलाकर बना है। ;1द्ध लोक ;2द्ध तंत्र। ये दोनों मात्र शब्द नहीं है। दोनों दो वर्गों को मिलाकर बनी एक व्यवस्था है। लोक दूसरे शब्दों में समाज है तो तंत्र दूसरे शब्दों में राज्य। लोकतंत्र यदि लोक स्वराज्य की तरफ झुका तो लोक मजबूत और मालिक होता है तथा तंत्र कमजोर और व्यवस्थापक। यदि लोकतंत्र सत्ता के एकत्रीकरण की दिशा में झुका तो तंत्र मजबूत और मालिक बन जाता है तथा लोक सिर्फ मतदान तक सीमित होकर तंत्र का मुखापेक्षी हो जाता है।वर्तमान भारत में लोकतंत्र सत्ता एकत्रीकरण का माध्यम बना हुआ है। भारत का लोकतंत्र स्वयं को लोक नियंत्रित तंत्र न मानकर लोक नियुक्त मानता है जिसमें लोक की भूमिका नियुक्ति से आगे शून्यवत् है।

दो आंदोलन दिख रहे हैं। ;1द्ध अन्ना जी का ;2द्ध रामदेव जी का। स्वतंत्रता के बाद पहली बार अन्ना जी ने लोकपाल के माध्यम से तंत्र के भ्रष्टाचार पर नकेल कसने की आवाज उठाई है। लोकपाल जनता के बीच आपसी व्यवहार में भ्रष्टाचार की जॉच नहीं करेगा। वह ऐसे भ्रष्टाचार की भी जांच नहीं करेगा जिसमें लोक के लोग भ्रष्टाचार में लिप्त हों। लोकपाल सिर्फ ऐसे मामलों में जॉच करेगा जो लोक की शिकायत पर तंत्र के भ्रष्टाचार को उजागर कर सके। अन्ना जी का आंदोलन तंत्र पर लोक के अंकुश की दिशा में है। जबकि इसके विपरीत रामदेव जी का तंत्र के मार्ग दर्शन या सशक्तिकरण का है जिसमें लोक तंत्र पर अंकुश न लगाकर स्वयं पर अंकुश का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। रामदेव जी का आंदोलन काले धन के खिलाफ है। स्वाभाविक है कि काला धन टैक्स चोरी से भी बनता है और भ्रष्टाचार से भी। काला धन जप्त होगा तो सरकार के पास जमा होगा। काला धन रोकने के लिये तंत्र लोक पर शिकंजा कसेगा। यदि तंत्र की नीयत और नीति ठीक रहती तो हम तंत्र के इस काम में मदद करते। यदि तंत्र की नीयत ठीक रहती और नीति गलत रहती तब हम तंत्र का मार्गदर्शन करते किन्तु जब तंत्र की नीयत भी बुरी है और नीति भी तब हम सरकार का खजाना भरने और लोक पर शिकंजा कसने की कसरत क्यों करें? यदि पांच सौ और एक हजार के नोट बन्द कर दिये जावें तो नुकसान लोक का होगा या तंत्र का। तंत्र लगातार नये–नये कानून थोपकर लोक को गुलाम बनाने का प्रयत्न कर रहा है और हमारा ना समझ बाबा लोक और तंत्र के बीच का अन्तर भी नहीं समझ रहा। मैं रामदेव जी के कार्य को बुरा नहीं कह रहा किन्तु यदि अन्ना के आंदोलन से रामदेव के आंदोलन की तुलना करें तो रामदेव का आंदोलन बहुत गलत समय पर गलत तरीके से गलत मांगों को लेकर गलत नीयत से किया गया दिखता है। जे 0पी 0 आंदोलन के बाद पहली बार तंत्र के अधिकारों के विरूद्ध लोक इक्ट्ठा होना शुरू हो रहा है। ऐसे में रामदेव जी सहायता न करके श्रेय की छीना झपटी करें यह ठीक नहीं।

मैंने कई बार लिखा है कि समाज में एक से दो प्रतिशत अच्छे लोग होते हैं तथा एक दो प्रतिशत बुरे। शेष अठान्नबे प्रतिशत बीच के लोग परिस्थिति अनुसार अच्छे बुरे होते हैं। इन्हें यदि शक्ति मिले और खतरा न हो तो ये कितना भी भ्रष्टाचार कर सकते हैं। दूसरी ओर इन्हें शक्ति न मिले और खतरा हो तो पूरी तरह इमानदार हो सकते हैं। तंत्र से जुड़े लोग पावर के कारण भ्रष्टाचार करते है न कि वे भ्रष्ट हे। क्यों नहीं ऐसे लोगों का पावर घटे? एक सरकारी स्कूल का शिक्षक बीस हजार रूपया वेतन के बाद भी भ्रष्टाचार करता है। दूसरी ओर वही व्यक्ति एक प्राइवेट स्कूल का शिक्षक है तो तीन हजार रूपया वेतन के बाद भी भ्रष्टाचार नहीं करता क्योंकि पावर और खतरे का अन्तर है। एक ही प्रकार की योग्यता में तंत्र से जुड़े शिक्षक और लोक से जुड़े शिक्षक के बीच इतना अन्तर क्यों? ये सब विचारणीय प्रश्न हैं।

समय आ गया है कि लोक और तंत्र के बीच जो वर्तमान संबंध है वह बदले। जय प्रकाश जी के समय विनोबा ने इस टकराव को धोखा दिया। अब रामदेव जी इस टकराव को कमजोर करने का नया शिगूफा मत छेड़े। यह संघर्ष कोई साधारण संघर्ष नहीं है कि रामदेव जी सरीखा कोई सीधा सादा शरीफ व्यक्ति निपटा ले। इसके लिये तो सत्ता सम्पत्ति प्रशंसा का मोह भी त्याग कर उच्च स्तरीय समझदारी सिद्ध करनी होगी जो उनके लिये संभव नहीं। तंत्र अच्छी तरह खतरे को समझ रहा है। तंत्र से जुड़े अधिकांश नेता एक जुट हैं। कुछ समय पूर्व तो विपक्षी दल अन्ना के आंदोलन को सत्ता के विरूद्ध संघर्ष मान रहें थे किन्तु अब सभी दल इस आंदोलन को खतरा मानने लगे हैं। शरद यादव का विचार आपने सुन लिया है। भाजपा रामदेव के आंदोलन में तो सड़क से लेकर गांधी समाधि तक उछलकूद कर रही थी किन्तु इस आंदोलन में उसे बोलने में भी हिचकी आ रही है। मेरी सलाह है कि हम अब रामदेव की चर्चा बन्द करके इस आंदोलन को गति दे तो एक नया मार्ग संभव है।

हमारे देश के तंत्र से जुड़े लोग अन्ना जी के आंदोलन को संसदीय लोकतंत्र और संवैधानिक व्यवस्था के विरूद्ध खतरा प्रचारित कर रहे हैं और आंदोलन से जुड़े लोग इस आरोप से इन्कार कर रहे हैं। मेरे विचार में हम आंदोलन समर्थक गलत है। यह आंदोलन इस सड़े गले संसदीय लोकतंत्र को लोक स्वराज्य की दिशा देने का पहला कदम है।जब तक हमारे समक्ष गुलामी और तानाशाही का खतरा था तब तक हम इस सड़े गले लोकतंत्र की पूजा करते रहे। अब हमारे समक्ष न गुलामी का डर है न तानाशाही का। अब हम क्यों इसकी पूजा करें? यह संविधान ही तो पूरी तरह असफल हुआ है। इस संविधान ने ही तो लोक को पूरी तरह संविधान समीक्षा से भी दूर कर दिया और तंत्र को उसमें संशोधन तक के असीम अधिकार दे दिये। लोग कहते हैं कि अम्बेडकर जी ने संविधान बनाया। मेरी जानकारी मुताबिक अम्बेडकर जी इतने गलत नहीं थे। सच्चाई चाहे जो हो। चाहे अम्बेडकर ने बनाया हो चाहे नेहरू ने चाहे किसी और ने। इस संविधान ने तंत्र को संविधान के साथ भी घपला करने के व्यापक अधिकार दे दिये। उन्नीस सौ पचास में संविधान लागू हुआ। उस समय जो संविधान बना उसमें तो पिछड़ी जातियों के आरक्षण का कोई प्रावधान नहीं था। आप अम्बेडकर जी की कमेटी द्वारा बनाये गये संविधान को खोलकर देख लीजिये। उसमें कहीं पिछड़ा वर्ग अलग नहीं है। सरकार ने मनमाने तरीके से यह कानून बना दिया। जब सुप्रीम कोर्ट ने उक्त कानून को संविधान के विपरीत घोषित कर दिया तो इन लोगों ने संविधान में ही उक्त कानून को जोड़कर सुप्रीम कोर्ट का मुंह बन्द कर दिया। यह संशोधन संविधान में पहला था जो अठारह जून इक्यावन को हुआ। संविधान में यह संशोधन प्रकिया संबंधी कठिनाई का निराकरण न होकर नीतिगत संशोधन था जिसके लिये संसद को कोई नैतिक अधिकार नहीं था। प्रश्न उठता है कि संविधान बड़ा है कि संसद। साठ वर्षो से इन तंत्र से जुड़े लोगों ने संविधान रूपी किताब को ढाल के रूप में उपयोग किया। संविधान नामक वह किताब संसदीय लोकतंत्र से नियंत्रित हुई अथवा उसने संसदीय लोकतंत्र को नियंत्रित किया? यदि संसद उस किताब के अस्तित्व में आने के शीघ्र बाद ही मौलिक परिवर्तन करने में सफल हुई तो वह किताब संसद की ढाल मात्र ही तो है। क्या स्वतंत्र अस्तित्व है उस किताब का? उस समय तो बेचारा न्यायालय भी कुछ नहीं कर सका भले ही अब चालीस पचास वर्ष बाद उसने कुछ हिम्मत दिखाई है। और अब तो न्यायपालिका ने भी स्वयं को लोक का संरक्षक मानने की अपेक्षा तंत्र का भाग मानना शुरू कर दिया है। अब तो न्यायपालिका भी अपना वेतन बढ़ाने से लेकर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने तक की दौड़ में लगी है। ऐसी स्थिति में अब लोक को स्वयं ही आगे आकर कुछ करना पड़ेगा। हम सबके सामने संसद संविधान का चीर हरण करती रही और यदि लोक संविधान पर प्रश्न उठाये तो यही संसदीय लोकतंत्र संविधान की पवित्रता की दुहाई देना शुरू कर देता है तथा उस संसदीय लोकतंत्र के पालित पोषित तथाकथित विचारक लोक की आलोचना करने लगते हैं।

मेरा तो सुझाव है कि अन्ना जी की टीम और खुलकर इस मामले में कदम उठावे। बीच में भटकाने वाले अपने आप हटकर चाहे इधर या उधर के जायेंगे। साफ ध्रुवीकरण होना चाहिये जो दिखता है कि शुरू हो चुका है। लोक और तंत्र के आपसी सम्बन्धों की पुनर्व्याख्या करनी ही होगी। संसदीय लोकतंत्र रूपी ऊँट को पहाड़ के नीचे लाकर उसकी औकात बतानी ही होगी। यदि संविधान भी इस ऊँट को साथ देने की कोशिश करेगा ता संविधान में भी संवैधानिक तरीके से संशोधन करना ही होगा और यदि तंत्र ने उसके बाद भी लोक से टकराने की हिम्मत की तो उसे मिश्र और टयूनीशिया की भी याद करानी होगी। मार्ग सिर्फ एक ही है कि लोक और तंत्र के सम्बन्धों का फिर से निर्धारण हो। अन्ना जी अरविन्द जी की टीम अब तक ठीक दिशा में है। यदि ये गड़बड़ाये तो भविष्य में कोई और आयेगा। नौ अप्रैल को यह सिद्ध हो गया है कि लोक की स्वतंत्रता की भूख जग गई है। तंत्र भी इस बार गंभीर दिखता है। आवश्यकता है कि मिल जुलकर आगे बढ़ें।

क्या वास्तव में वर्तमान राजनतिक व्यवस्था पूंजीपतियों, बुद्धिजीवियों राजनेताओं का मिला जुला षड़यंत्र है?

आज सम्पूर्ण भारत मंहगाई बढ़ने से चिन्तित है। भारत का हर गरीब, हर श्रमजीवी, रिक्शा चालक तक मंहगाई के खिलाफ दुखी है। राजनेता, सामाजिक कार्यकर्ता, बुद्धिजीवी, मध्यवर्गीय व्यापारी यहॉ तक कि छोटे किसान तक मंहगाई से दुखी हैं। मुझे याद है कि स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही राजनेताओं तथा उनके आश्रित बुद्धिजीवियों ने मंहगाई और गरीबी के विरूद्ध सामूहिक हल्ला बोल दिया था जो साठ वर्ष बाद भी उसी रूप में उसी प्रकार जारी है। मैने इन आर्थिक समस्याओं पर पिछले तीस चालीस वर्षों से गहन शोध किया। मुझे कई बार आंकड़े इकठ्ठे करने पड़े क्योंकि जो नतीजे आते थे उनमें पूरे भारत में मैं अकेला दिखता था। मैं अपने आधे अधूरे नतीजों पर कुछ प्रश्न करता था तो कोई अन्य उत्तर देने वाला भी नहीं था। परिणामस्वरूप मुझे अकेले ही बढ़ना पड़ा और आज मैं यह कहने की स्थिति में हूँ कि भारत में पिछले साठ पैंसठ वर्षों से मंहगाई, गरीबी, का जो हल्ला किया जा रहा है वह पूरी तरह या तो झूठा है या कृत्रिम। न मंहगाई वास्तविक है न गरीबी। ये सब प्रचार भारत के बुद्धिजीवियों, पूंजीपतियों, राजनेताओं का मिला जुला षड़यंत्र मात्र है।

सबसे ज्यादा प्रचार मंहगाई का है। मैने बड़ी कठिनाई से बीस पच्चीस वर्ष मेहनत करके सरकारी आंकड़े जुटाये। मैं जो आंकड़े दे रहा हूँ वे सब सरकारी रेकार्ड से हैं। एक दो प्रतिशत कम ज्यादा संभव हैं जिनका निर्णय पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। मैं पहले भी मानता था और अब तो आंकड़ों से सिद्ध है कि मंहगाई का पूरा का पूरा हल्ला प्रायोजित है, झूठ है, षड़यंत्र है, राजनेताओं बुद्धिजीवियों का खेल है। सरकारी कर्मचारी यह हल्ला करके अपना वेतन कई गुना बढ़वा लेता है तो राजनेता इसी नाम पर सरकारों को उलटने पलटने में संलग्न रहता है। बुद्धिजीवी वर्ग मंहगाई को श्रम शोषण का हथियार बनाकर हल्ला करता रहता है। साठ वर्ष पूर्व मैं जब बिल्कुल बच्चा था तब मेरे पिताजी मुझे रोज दस पैसा देते थे। मैं सामन की दुकान से दस पैसे का नमकीन सेव खरीदकर खाता था या कभी–कभी मूंगफली भी खा लेता था। आज दस पैसा छः रूपया साठ पैसा के बराबर है। उस समय मुझे दस पैसा में जितना सेव या मूंगफली मिलता था आज छः रूपया साठ पैसा में उससे कुछ ज्यादा ही मिल जाता है। उस समय मेरे पिताजी दस पैसा को जितना महत्व देते थे उतना महत्व आज मैं दस रूपये को नहीं देता। क्योंकि उस समय की अपेक्षा हमारी आर्थिक स्थिति भी मजबूत हुई है। मैं जो लिख रहा हूँ वह औसत है न कि किसी व्यक्ति की कहानी।

बहुत हल्ला है कि खाने का सामान महंगा हुआ है। सरकारी आंकड़े प्रमाणित करते हैं कि सन् सैंतालीस में एक रूपया का तीन किलो तीन सौ ग्राम गेहूँ उपलब्ध था। आज छयासठ रूपया में पांच किलो उपलब्ध है। उस समय का गेहूँ आज के गेहूँ से कुछ कमजोर क्वालिटी का था। चावल और धान भी उस समय की अपेक्षा आज सस्ता ही है। कपड़ा और शक्कर तो बहुत सस्ती हुई है। जिस दाल और खाद्य तेल के लिये पिछले साठ वर्षों से अखबार वाले दिनरात मंहगा होने की रट लगाये रहते हैं उस दाल और तेल मे भी तो सन् सैंतालीस की तुलना में सिर्फ तीस प्रतिशत की ही बुद्धि हुई है।

मंहगाई का सबसे अधिक हल्ला डीजल पेट्रोल बिजली का है। साठ वर्षों में पेट्रोल का मूल्य अस्सी प्रतिशत, डीजल का बीस प्रतिशत तथा बिजली का चालीस प्रतिशत मात्र बढ़ा है। दूसरी ओर भारत की एक तिहाई गरीब आबादी का औसत विकास अस्सी प्रतिशत, मध्यम वर्ग का आठ सौ बीस प्रतिशत तथा उच्च वर्ग का चौसठ सौ प्रतिशत हुआ है। डीजल पेट्रोल बिजली की कुल खपत का करीब पांच प्रतिशत गरीब वर्ग, पच्चीस प्रतिशत मध्यम वर्ग तथा सत्तर प्रतिशत उच्च वर्ग करता है। डीजल पेट्रोल की मूल्य वृद्धि सिर्फ पच्चास प्रतिशत हुई है जबकि खपत करने वालों की कय शक्ति कई सौ गुना बढ़ गई। साइकिलें मोटर साइकिल में और मोटर साइकिलें कार में बदलती जा रही हैं। सन् सैतालीस से आज तक कुल आबादी चार गुना बढ़ी है किन्तु आवागमन साठ से अस्सी गुना तक बढ़ गया है। डीजल पेट्रोल बिजली की खपत भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। फिर भी ये लोग थोड़ी सी मूल्य वृद्धि होते ही आसमान सर पर उठा लेते हैं। अब तो अधिकृत सरकारी आंकड़े मैं लिख रहा हूँ। अब तो उनकी बोलती बन्द हो जानी चाहिये।

आंकड़े बताते हैं कि सन् सैंतालीस से सतहत्तर तक डीजल बिजली पेट्रोल की मूल्य वद्धि रोक कर रखी गई। परिणामस्वरूप श्रम मूल्य घटता चला गया। सन् उन्यासी से बयासी तक के तीन वर्षों में ही डीजल और पेट्रोल के मूल्य बढ़ाकर दो गुने कर दिये गये थे। आंकड़े यह भी बताते हैं कि सन् अस्सी से ही शारीरिक श्रम मूल्य बहुत तेजी से बढ़ा। श्रम की मांग बहुत तेज गति से बढ़ी। क्या कारण है कि सन् सैंतालीस से अठहत्तर तक श्रम मूल्य घटता चला गया और उन्यासी के बाद बहुत तेज गति से बढ़ा। मुझे भारत के अर्थशास्त्रियों से इस प्रश्न का उत्तर

चाहिये। सन् सैंतालीस में श्रम मूल्य एक रूपया पचपन पैसा था जिसे सामान्यतया सन् सतहत्तर तक सात रूपया हो जाना चाहिये था किन्तु वह सतहत्तर तक घटकर सात की जगह तीन रूपया ही हो पाया। उसके बाद जब कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि हुई तब ही बढ़ा और अब एक सौ पच्चीस के करीब है। ये आंकड़े तो मेरे नहीं हैं बल्कि सरकारी हैं। जब डीजल पेट्ोल का मूल्य तेजी से बढ़ा तब भारत में औद्योगिक उत्पादन में भी गिरावट नहीं देखी गई ऐसा आंकड़े बताते हैं। मैं तो चालीस वर्षो से बराबर लिखता रहा कि डीजल पेट्ोल बिजली की मूल्य वृद्धि से श्रम की मांग बढ़ेगी क्योंकि इन दोनों का सीधा सम्बन्ध है। मैंने यह भी लिखा था कि इससे व्यवस्था तथा आवागमन से उर्जा बचेगी जो कृषि या औद्योगिक उत्पादन वृद्धि में काम आयेगी। इससे प्राप्त धन कृषि तथा औद्योगिक उत्पादनों पर लगने वाले भारी करों से भी मुक्ति दिला देगा जो हमारे आयात निर्यात को संतुलित करेगा। प्रश्न उठता है कि उर्जा मूल्य वृद्धि स मुख्य रूप से प्रभावित कौन होगा? स्पष्ट है कि सर्वाधिक प्रभावित होगा सम्पन्न वर्ग जिसकी भौतिक उन्नति स्वतंत्रता से आज तक चौसठ सौ प्रतिशत बढ़ी है। यह भौतिक उन्नति वास्तविक है। सन् सैंतालीस के रूपये के आधार पर है, आज का रूपया आधारित नहीं। यदि आज के रूपय को गिनेंगे तो वह चौसठ में छियासठ का गुणा करके निकालना पड़ेगा। दूसरा प्रभाव मध्यम वर्ग पर होगा जिसकी प्रगति भी आठ सौ बीस प्रतिशत हुई है। इससे भी ज्यादा नुकसान इन मध्यम उच्च वर्गो को यह दिखता है कि इन्हें श्रम महंगा खरीदना पड़ेगा। आज तो यह हाल है कि हर मध्यम और उच्च परिवार श्रम खरीदने का अभ्यस्त हो गया है। अपनी पत्नी या बच्चे को पढ़ा लिखाकर नौकरी कराना और उसकी जगह सस्ते नौकर खोजना सामाजिक व्यवस्था में शामिल है। मेरे अपने निकट के परिचित लगातार इस बात से परेशान रहते हैं कि उन्हें नौकर नहीं मिलते। उनकी अपनी भौतिक उन्नति भले ही आठ गुनी या चौसठ गुनी हुई हो किन्तु श्रमिक के जीवन स्तर में दो गुनी वृद्धि उन्हें कांटे के समान चुभती है। ये मध्यम उच्च वर्ग के लोग ही राजनेताओं तथा कुछ अर्थशास्त्रियों को प्रभावित करके निरंतर मंहगाई मंहगाई का नाटक करते देख जाते हैं। स्वयं अपने बच्चे बच्ची के लिये पचास पचास हजार रूपये मासिक की नौकरी खोजना और उसके स्थान पर सस्ते नौकर का वातावरण बनाना आज का फैशन है। साथ ही अपने व्यवसाय से लेकर घर तक उच्च तकनीक का प्रयोग और श्रमिक को श्रम के लिये मजबूर देखना ही है आज को संस्कृति। यदि श्रमिक के जीवन स्तर में कुछ सुधार आया तो तत्काल ही प्रतिकिया तैयार है कि आज का मजदूर काम करने को मजबूर नहीं है इसलिये मजदूर नहीं मिलते।

खेती भी इन पूंजीपतियों, बुद्धिजीवियों, राजनेताओं की कुटिल नीतियों की शिकार है। इन तीनों का रैकेट तीन काम एक साथ करता है ;1द्धकृषि उत्पादों को सस्ता रखा जाये ;2द्ध कृत्रिम उर्जा को सस्ता रखा जाये ;3द्ध श्रम मूल्य को कम रखा जाये। इस कार्य के लिये यह रैकेट गरीब वर्ग को उत्पादक और उपभोक्ता के रूप में दो वर्गो में बांटकर रखता है। गरीब उपभोक्ताओं से मांग कराई जाती है कि कृषि उत्पाद मूल्य न बढ़ें। इस मांग को आधार बनाकर कृषि उत्पादों के मूल्य घटाकर रखे जाते हैं। सन् सैंतालीस से आज तक तेल और दाल के मूल्यों में सिर्फ पच्चीस प्रतिशत की वृद्धि हुई है। सन् सैंतालीस में एक रूपया मे जितना तेल या दाल उपलब्ध रही आज छयासठ रूपये में उससे थोड़ी सी कम मिलती है। अन्य सभी कृषि उत्पाद चाहे वह गेहूँ चावल हो या शक्कर या कपास सबको बहुत सस्ता रखा गया। उपर से कृषि उत्पादों पर अनेक कर थोपने की भी हिम्मत दिखाई गई। आज भारत एक ऐसा देश है जहॉ सब प्रकार के कृषि उत्पादों पर कर वसूलने के बाद भी सिर उठाकर सरकार कहती है कि भारत में खेती पर कोई कर नहीं है। दूसरी ओर किसानों से ही मांग कराई जाती है कि बिजली डीजल मजदूर अंग्रेजी खाद हमें सस्ते में दी जाय। कितनी तिकड़म भरी चालाकी है। साथ में बृद्धिजीवी पूंजीपति राजनेता लगातार मांग करता रहता है कि शिक्षा स्वास्थ्य का बजट बढ़ाओ जिससे बुद्धि का मूल्य बढ़ता रहे, उसके बच्चे अच्छी नौकरी करते रहें और घर में सस्ता श्रम खरीदते रहें। सारी तिकड़म इस बात पर आकर टिक जाती है कि कृत्रिम उर्जा बिजली डीजल पेट्ोल का मूल्य न बढ चाहे उसके लिये कुछ भी करना पड़े। सन् अठहत्तर से बयासी तक की कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि ने आभास करा दिया है कि उससे श्रम मूल्य बढ़ना निश्चित है। इसलिये हर बुद्धिजीवी बुद्धि की मांग बढ़ाने और श्रम का मूल्य बढ़ाने की कवायद करता दिखता है। श्रम का मूल्य बढ़ाने से बुद्धिजीवी पूंजीपति वर्ग को दुहरा फायदा होता है। पहला यह कि बाजार में श्रम की मांग घटती है और इस मांग के घटने से श्रम का बाजार मूल्य भी नहीं बढ़ता। दूसरा लाभ यह है कि श्रमजीवी अहसान मानता है कि सरकार अथवा व्यवस्थापक उसे बाजार मूल्य से ज्यादा देने दिलाने के लिये प्रयत्नशोल है। उस बेचारे को तो यह जानने ही नहीं दिया जाता कि उसे कुऍं में धक्का देकर बाहर निकालने की दया करने का उद्देश्य क्या है।

अब उपलब्ध आंकड़े बिल्कुल साफ–साफ प्रमाणित करते हैं कि गरीब ग्रामीण श्रमजीवी स्वतंत्रता के बाद लगातार बुद्धिजीवी, पूंजीपति, राजनेताओं के द्वारा छले जा रहे हैं।

जी डी0 पी0 के आंकड़े भी स्पष्ट करते हैं कि गरीब ग्रामीण श्रमजीवी वर्ग की औसत जी डी0 पी0 रेट एक प्रतिशत पर स्थिर है जबकि मध्यम वर्ग की चार से नौ तक घटती बढ़ती रहती है तथा उच्च वर्ग की तो दस से अठारह के बीच है।

भारत में आम तौर पर यह बात बताई जाती है कि भारत में पूरी दुनिया में सबसे अधिक मंहगा डीजल पेट्रोल है। मेरे कई पाठक इमेल करके मुझे यह बात बताते रहते हैं। यह प्रचार बिल्कुल असत्य है। भारत में वर्तमान पेट्रोल मूल्य की अपेक्षा पच्चीस तीस देशों में पेट्रोल का मूल्य अधिक है। टर्की में पेट्रोल रूपये के आधार पर एक सौ तेरह रूपया, युनाइटेड किंगडम में छियान्नबे रूपया, नार्वे में एक सौ बारह रूपया है। यहॉ तक कि सोनिया जी के गृह देश इटली में भी पेट्रोल भारत से बहुत मंहगा है। मुझे दुख है कि भारत के आम लोगां से यह सच छिपाकर एक झूठ को सच बनाया जा रहा है। मैं मानता हूँ कि अमेरिका आदि देशों में डीजल पेट्रोल भारत की अपेक्षा सस्ता है। किन्तु साथ ही आप भी यह मानिये कि अमेरिका आदि देश श्रम अभाव देश हैं और भारत श्रम बहुल देश। अमेरिका में श्रम का मूल्य एक घंटे का जितना है उतना भारत में एक दिन का नहीं। अमेरिका में बुद्धि और श्रम के मूल्य में इतना अन्तर नहीं जितना भारत में है। अमेरिका का निवासी छोटे मोटे घरेलू श्रम का काम स्वयं करता है जबकि भारत में उस छोटे काम के लिये भी मजदूर रखा जाता है। क्योंकि भारत में श्रम बहुत सस्ता है। अमेरिका में कृत्रिम उर्जा श्रम मूल्य को संतुलित करने का माध्यम है और भारत में शोषण का। यदि हम पाकिस्तान, बंगला देश, अफगानिस्तान आदि की भारत के डीजल पेट्रोल से तुलना करें तो हमें यह भी याद रखना होगा कि इन देशों की अर्थ व्यवस्था तबाह है जबकि भारत तेजी से विकास कर रहा है।

भारत को कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं करना पड़ेगा। भारत अपने आर्थिक ढांचे में मात्र इतना ही परिवर्तन करे कि इन्कम टैक्स, सेल्टैक्स, आदि करों को हटाकर डीजल, पेट्रोल, बिजली, केरोसिन, कोयला आदि पर डाल दें। गरीबी रेखा से नीचे वालों को एक निश्चित मासिक कैश सब्सीडी जीवन भत्ता के रूप में देकर अन्य सारी सुविधाएँ बन्द कर दे। आर्थिक असमानता कम हो जायेगी, काला धन कम बनेगा कम विदेश जायेगा, पर्यावरण प्रदूषण कम हो जायेगा, श्रम और बुद्धि के बीच की दूरी घट जायेगी, मुद्रा स्फीर्ति नामक मंहगाई नहीं रहेगी और विदेशी कर्ज भी कम हो जायेगा, भ्रष्टाचार भी खतम हो जायगा तथा साथ ही नक्सलवाद पर भी व्यापक प्रभाव होना निश्चित है।

मैं जानता हॅ कि साम्यवादी ऐसा होने ही नहीं देंगे क्योंकि जिस श्रम शोषण और आर्थिक असमानता के नाम पर वे सत्ता का ख्वाब देखते रहते हैं वह चूर–चूर हो जायेगा। भाजपा के पास कोई अर्थशास्त्री नहीं जो समझ सके। अर्थशास्त्रियों में एकमात्र भरत झुनझुनवाला ही कुछ धरातल की बात करते हैं अन्यथा और लोग तो अमेरिका की किताबों में पढ़े विचारां से ही चिपके रहते हैं, मनमोहन सिंह प्रणव मुखर्जी समझने के बाद भी खतरा उठाने को तैयार नहीं होंगे क्योंकि नेहरू परिवार प्रधानमंत्री की कुर्सी पर दांत गड़ायें बैठा है। दूसरी ओर यदि श्रम को इसी तरह बुद्धि की तुलना में कमजोर किया जाता रहा तो बड़ा खतरा हो सकता है। आप सोचियें कि यदि आज सम्पन्न लोगों की विकास दर सोलह प्रतिशत और श्रम की एक प्रतिशत है तो क्या यह न्यायसंगत है? न्याय तो यह था कि श्रम की विकास दर औसत से ज्यादा और सम्पन्नों की कम होती, किन्तु मान लीजिये कि इतना संभव नहीं तो क्या हम श्रम की वर्तमान विकास दर को एक से बढ़ाकर दो भी नहीं कर सकते? सम्पन्नों की विकास दर सोलह से घटाकर चौदह भी हो जाये तो क्या फर्क पड़ेगा? यदि कोई राजनेता यह नहीं कर सकता तो हमारे अन्ना अरविन्द की जोड़ी यह चर्चा शुरू करें। यदि कोई न करे तो हम आप शुरू करें। श्रम के साथ न्याय करना न सिर्फ पुण्य कार्य है बल्कि हमारी आंतरिक व्यवस्था में भी शान्ति के लिये आवश्यक है।

याद रहे कि बुद्धिजीवी और श्रमजीवी के बीच बढते अंतर का कारण व्यक्ति नही, सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था है जो लगातार श्रम और बुद्धि के बीच की क्षमता का अंतर बढ़ा रही है। प्राचीन काल मे भी श्रम और बुद्धि के बीच बढे अंतर ने शुद्र नामक एक स्थाई जाति बना दी थी जिसके दुष्परिणाम हम आज तक भोग रहे है । अब शुद्र नाम हटकर श्रमिक नाम से बुद्धिजीवियों मे वैसी ही खतरनाक भावना घर कर रही है । आम लोग कहने लगे है कि मजदूर नही मिलते क्योकि सरकार उन्हे सस्ता अनाज दे रही है । सरकार श्रमजीवियो को वुद्धिजीवी मे शामिल करके श्रमजीवियों की संख्या कम कर रही है । सरकार को यह समझना चाहिये कि श्रम ही रोजगार का सृजन कर सकता है बुद्धि नही । वुद्धि व्यक्तिगत रोजगार खोज सकती है जो अन्ततोगत्वा कई गुना अधिक बेरोजगारी बढायेगी। श्रम और वुद्धि के बीच बढता फर्क न भावनात्मक तरीके से दूर हो सकता है न प्रशासनिक तरीके से । यह तो दूर होगा आर्थिक तरीके से और वह तरीका है ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें गरीब ग्रामीण श्रमजीवी की वर्तमान विकास दर एक प्रतिशत से बढे और सम्पन्नो की सोलह से घटे । यह अंतर ज्यो ज्यो घटता जायगा त्यो त्यो यह खतरा टलता जायगा।

मैंने कई आंकड़े दिये हैं जो लीक से हटकर है। मैंने पूरा प्रयास किया है कि कहीं गणितीय त्रुटि न हो। फिर भी यदि कहीं गणितीय त्रुटि हुई हो तो आप सही आंकड़े बताने की कृपा करें जिससे मैं भविष्य में अपना कथन सुधार सकूँ। यदि कोई पाठक आंकड़ों को चुनौती देकर कोई नये आंकड़े देगा तो मैं उसका स्वागत करूँगा। मेरा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि श्रम के साथ हो रहा बौद्धिक छल कपट प्रकाश में आवे और मं इस दिशा में पहल करूँ।

आर्थिक मुद्दो पर कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु

(1) भारत में सन 1947 से आज तक रूपये का 66 प्रतिशत अवमूल्यन हुआ है। उस समय का एक रूपये का क्रय मूल्य आज के 66 रूपये के समान है।

(2) 1947 से आज तक भारत मे पेट्रोल का मूल्य 111 गुना, मट्टी तेल का 66 गुना डीजल का 79 गुना बिजली का 90 गुना बढा है।

(3) 1947 से आज तक शक्कर का मूल्य 37 गुना, तिलहन का 83 गुना, दालो का 88 गुना , फल सब्जी का 102 गुना दूध का 62 गुना मांस अंडा 104 गुना बढा है।

(4) 1947 में भारत मे श्रम मूल्य 1.55 रूपया , 1977 मे 3.00,रूपया 2000 मे 70.13 रूपया तथा वर्तमान मे 125रूपया के करीब है।

(5) 1977 से 1981 तक पेट्रोल डीजल के मूल्यों मे भारी वृद्धि करके चार वर्ष मे ही दो गुना कर दिया गया था।

(6) 1977 ये 1981 तक के चार वर्षो मे श्रम मूल्य भी बढकर दो गुना हो गया था।

(7) 1977 से 1981 तक के चार वर्षो मे गेहूँ चावल शक्कर बहुत सस्ती हुई थी। जिसके प्रभाव से बाद मे इनके उत्पादन मे कमी आई ।

(8) दुनियॉ के अनेक देशों मे डीजल पेट्रोल के मूल्य भारत की अपेक्षा बहुत ज्यादा है। टर्की मे पेट्रोल 113 रूपये नार्वे में 112 रूपये यु. के. मे 96 रू0 इसी तरह स्वीडन, इडली आदि पचासो देशो मे भारत से ज्यादा है। खाडी के देश तथा अमेरिका ब्रिटेन आदि श्रम अभाव देशो मे पेट्रोल के मूल्य भारत से कम है।

(9) भारत की कुल आबादी के तीन भाग गरीब , मध्यम , सम्पन्न के रूप मे बराबर बराबर करें तो गरीब लोगो का 1947 से आज तक का कुल विकास औसत 1प्रतिशत मध्यम वर्ग का औसत 5प्रतिशत तथा सम्पन्नो का औसत 12 प्रतिशत के करीब है। जो कुल मिलाकर गरीबो का 180प्रतिशत मध्यम वर्ग का 820प्रतिशत तथा सम्पन्न वर्ग का 6400 प्रतिशत हुआ है।

(10) सन 1947 से आज तक गेंहूँ के मूल्य 45 गुना चावल का 51 गुना बढा है । सन 1947 मे गेंहूँ का खुदरा मूल्य 33 रूपया प्रति क्विटंल था। आज 1400 रू0 करीब है।

प्रश्नोत्तर

कपिल सिब्बल के प्रश्न और उत्तर –

केन्द्रीय मंत्री तथा ड्राफटिंग कमेटी के सदस्य कपिल सिब्बल जी ने बहुत दिमाग लगाकर एक प्रश्न उछाला है कि लोकपाल का अधिक मजबूत होना संसदीय लोकतंत्र के लिये एक खतरा है। अन्ना जी की टीम भी इस प्रश्न का ठीक उत्तर नहीं दे पा रही।

सबसे पहले सिब्बल जी को यह समझना चाहिये कि लोकतंत्र का अर्थ लोक नियंत्रित तंत्र होता है, लोक नियुक्त तंत्र नहीं। वर्तमान संसदोय लोकतंत्र लोकतंत्र की लोक नियुक्त तंत्र की परिभाषा को ही लोकतंत्र समझता है जो गलत है। सिब्बल जी अब लोक नियंत्रित तंत्र की परिभाषा को समझने की कृपा करें।

सिब्बल जी का दूसरा प्रश्न यह है कि सिविल सोसाइटी समानान्तर सरकार बनाना चाहती है। सिब्बल जी को मालूम होना चाहिये कि स्वतंत्रता के बाद भारत में लोकतंत्र आया और लोकतंत्र में लोक सरकार होता है तंत्र लोक का प्रतिनिधि। हम जिसे संसद कहते हैं वह हमारी प्रतिनिधि है जिसे हम जब चाहें तब बदल सकते हैं, हम जब चाहें तब उसके अधिकारों की समीक्षा कर सकते हैं। दुर्भाग्य से सन् सैंतालीस से पच्चास तक तो लोक मालिक रहा किन्तु पच्चास के बाद हमारे तंत्र रूपी प्रतिनिधि ने स्वयं को सरकार कहना शुरू कर दिया। इन लोक प्रतिनिधियों ने एक समानान्तर सरकार बना ली और स्वयं

को व्यवस्थापक की जगह पर संरक्षक मानना शुरू कर दिया। लोकतंत्र में तथाकथित सरकार लोक रूपी सरकार की व्यवस्थापक होती है कष्टोडियन नहीं जैसा सिब्बल जी समझते हैं। यदि उस समय लम्बी गुलामी की गुलाम मानसिकता के कारण तथा गुलामी से संघर्ष करने वालों पर अतिविश्वास के कारण लोक ने सरकार शब्द पर प्रश्न नहीं उठाये तो इसका यह मतलब नहीं कि लोक आज भी यह प्रश्न नहीं उठा सकता। सिब्बल जी उत्तर दें कि लोकतंत्र में तंत्र व्यवस्थापक होता है अथवा कष्टोडियन।

सिब्बल जी का तीसरा प्रश्न है कि संवैधानिक व्यवस्था को खतरा है। सिब्बल जी को जानना चाहिये कि भारतीय संविधान में "हम भारत के लोग" सबसे उपर है न कि भारत की संसद। व्यक्ति के उपर कानून, कानून के उपर संसद, संसद के उपर संविधान और संविधान के उपर "हम भारत के लोग" रूपी लोक होता है। संविधान में संशोधन का अधिकार संसद को देने की लोक की मूल भावना प्रकिया संबंधी संशोधन तक थी न कि नीतिगत संशोधन की। दुनिया के अधिकांश देशों में संविधान में नीतिगत संशोधन के लिये लोक की सलाह ली जाती है न कि जन प्रतिनिधि उसके अन्तिम अधिकारी हैं। सिब्बल जी स्पष्ट करें कि लोकतंत्र में संविधान उपर है या संसद। यदि संविधान उपर है तो संविधान संशोधन में संसद को असीम अधिकार होने चाहियें अथवा उसमें लोक की भी कभी कोई भूमिका होगी।

कुछ लोग यह भी प्रश्न करते हैं कि हमारी तथाकथित सरकार ने ऐसी सलाहकार समिति कैसे बना दी जिसमें तंत्र से जुड़े लोगों से भिन्न कोई व्यक्ति सलाह देने के लिये अधिकृत हो। प्रश्न कर्ता के अनुसार ऐसी प्रकिया ही गलत थी। मेरी जानकारी के अनुसार यह कमेटी तो मात्र अल्पकालीन है, लोकपाल मुद्दे पर है, जनमत के दबाव में बनी है। हमारी सरकार ने तो सोनिया गांधी के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति बना रखी है जिसमें एक सांसद सोनिया गांधी और शेष सब नागरिक समाज के लोग हैं। उसे हर मामले में वर्षों तक सरकार को सलाह देने का अधिकार प्राप्त है। सिब्बल जी उत्तर दें कि उस कमेटी की अपेक्षा अन्ना जी की कमेटी में क्या कुछ विपरीत प्रकिया है।

मुझे ऐसा महसूस होता है कि अन्ना जी तो इस मामले में आंशिक रूप से स्पष्ट भी है किन्तु अन्य सदस्य अब तक अपनी सन् सैंतालीस से दो हजार ग्यारह तक की मानसिकता से नहीं उबर पाये हैं। आवश्यकता है कि सिब्बल जी सरीखे प्रश्न कर्ताओं के प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर दिये जायें।

कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न– एक पत्रिका सच्ची मुच्ची के जनवरी ग्यारह के अंक में देश के पंद्रह प्रमुख विद्वानों ने एक खुला पत्र प्रकाशित करके सरकार से यह मांग की है कि वह नरेगा के अर्न्तगत दी जाने वाली मजदूरी को न्यूनतम श्रम मूल्य के समकक्ष करे। आपके विचार में यह मांग कितनी उचित है? आप भी श्रम मूल्य वृद्धि के लिये हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं। आपने नरेगा के श्रम मूल्य वृद्धि की भी कई बार मांग की है। आप इन विद्वानों की मांग से कहाँ तक सहमत हैं? खुला पत्र इस प्रकार है। भारत सरकार एवं राज्य सरकारों को न्यूनतम मजदूरी कानून का सम्मान करना चाहिए और नरेगा श्रमिकों से कम मजदूरी देकर जबरन काम करवाना रोकना चाहिए। भारत ने एक उल्लेखनीय कानून, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी कानून–2005 पास करके ग्रामीण भारत के परिवारों को एक न्यूनतम स्तर की आय प्रदान की है और साथ ही विभिन्न प्रकार के कानूनी हकों को देकर सशक्त किया है। मजदूरी पर 100 दिन काम का अधिकार मिला है। यह कल्पना से भी बाहर है कि सरकार अपने ही काम में न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी दे। एक असंवैधानिक व जानबूझ कर लिये गये निर्दयतापूर्ण निर्णय के तहत भारत सरकार ने नरेगा श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी से अलग करके न्यूनतम मजदूरी कानून की महत्ता को नष्ट किया है और जिस चीज को सर्वोच्च न्यायालय ने बेगार या जबरन मजदूरी कहा उसे कानूनी जामा पहनाने का प्रयास किया है। जनवरी 2009 में एक नोटिफिकेशन से भारत ने इस कानून के तहत मजदूरी को 100 रूपये पर रोक दिया। धीरे–धीरे कई राज्यों में महानरेगा में मजदूरी कानूनी रूप से मान्य मजदूरी से भी कम होती गई। पिछले साल में खाद्यान की बेतहाशा मूल्य वृद्धि से यह मजदूरी और ज्यादा कम हो गई। बहुत सारी राज्य सरकारों ने, केन्द्र की दर से ज्यादा मजदूरी देने से इन्कार कर दिया और अब कई राज्य नरेगा श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी का भुगतान कर रहे है। न्यूनतम मजदूरी कानून ;1948द्ध राज्य

सरकारों व केन्द्र सरकारों को यह अधिकार देता है कि वे अधिसूचित रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी तय करे। कानून यह कहता है कि 5 साल के अन्दर–अन्दर न्यूनतम मजदूरी में बदलाव होना चाहिए। 15वें राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन ; 1957 द्ध में न्यूनतम मजदूरी तय करने के लिए जरूरत आधारित फार्मूला ईजाद किया गया जो न्यूनतम भोजन आवश्यकता, कपड़े की आवश्यकता जीवन यापन की न्यूनतम जरूरते व ईंधन के खर्चे को ध्यान में रखकर दिया गया। इन सिफारिशों को सर्वोच्च न्यायालय ने यूनियन बनाम केरल सरकार ; 1961 द्ध के मामले में बाध्यकारी बनाया और कामगार बनाम मेनेजमेन्ट ऑफ रेप्टोकोस बेट 2005 कम्पनी लिमिटेड ; 1992 द्ध के मामले में इन जरूरतों को विस्तार करके सर्वोच्च न्यायालय ने न्यूनतम मजदूरी के आधार को व्यापक व बाध्यकारी बनाया। इससे भी आगे बढ़कर सर्वोच्च न्यायालय ने इन सब आदेशों में यह साफ कहा कि न्यूनतम मजदूरी न देना बेगार व जबरन श्रम की श्रेणी में आता हैं। जो संविधान की धारा 23 में प्रतिबन्धित है। इससे भी आगे सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जबरन श्रम कई तरीकों से माना जा सकता है जिसमें गरीबी व जरूरतों का पूरा न होना शामिल है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि 1 जनवरी, 2009 के सरकारी नोटिफिकेशन को आन्ध्रप्रदेश उच्च न्यायालय ने निरस्त कर दिया है परन्तु भारत सरकार इसे पूरे देश में न मानने पर अड़ी हुई है। आज जब उत्पादकता दर 8 से 10 प्रतिशत है और गरीब व अमीर के बीच अन्तर बढ़ता जा रहा है। ऐसे में एक मात्र महानरेगा ही ऐसा कानून है जो समाज में सबसे नीचे बैठे लोगों को मूलभूत अधिकार देता है। न्यूनतम मजदूरी को न मानना पूरी तरह असंवैधानिक है। यह भारत के मानवीय अधिकारों व मूल्यों का खुला उल्लंघन है। भारत सरकार को तुरन्त इस असंवैधानिक नोटिफिकेशन को वापिस लेना चाहिए और साथ ही सभी राज्य सरकारों को इस बात के लिये आश्वस्त करना चाहिए कि भारत में हर मजदूर को न्यूनतम मजदूरी का भुगतान होगा। इस खुले वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने वाले प्रमुख लोग निम्न हैं–

1 न्यायाधीश एस0एन0 वेंकटचलैया ; भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश द्ध। 2 न्यायाधीश जे0एस0 वर्मा ; भारत के पूर्व न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय द्ध। 3 न्यायाधीश वी0आर0 कृष्णा अयर ;भारत के पूर्व न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालयद्ध।

4 जस्टिस पी0बी0 सावन्त ; सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश द्ध। 5 जस्टिस के रामास्वामी ; सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश द्ध। 6 जस्टिस सन्तोष हेगड़े ; लोकायुक्त कर्नाटक व पूर्व न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय द्ध। 7 जस्टिस ए पी शाह ; पूर्व मुख्य न्यायाधीश दिल्ली उच्च न्यायालय द्ध। 8 जस्टिस वी0एस0 दवे ; पूर्व जज, राज, उच्च न्यायालय द्ध। 9 डॉ0 उपेन्द्र बक्शी ;प्रोफेसर ऑफ लॉ, दिल्ली विद्यालय द्ध। 10 डॉ0 मोहन गोयल ; पूर्व कानून के प्रो0 लॉ स्कूल ऑफ इण्डिया, बेंगलोर द्ध। 11 फली एस नरीमन ; वरिष्ठ अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय द्ध। 12 कामिनी जायसवाल ; वरिष्ठ अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय द्ध। 13 डॉ0 राजीव धवन ;वरिष्ठ अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय द्ध।

14 प्रशान्त भूषण ; वरिष्ठ अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय द्ध। 15 वृन्दा ग्रोवर ;अधिवक्ता दिल्ली उच्च न्यायालयद्ध। उत्तर– उपरोक्त सभी हस्ताक्षर कर्ता विद्वान हैं, संविधान विशेषज्ञ हैं, वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था की कमजोरियों को समझते हैं किन्तु आवश्यक नहीं कि इन्हें समाज शास्त्र का भी ज्ञान हो। उपरोक्त पंद्रह लोगों में एक न्यायाधीश श्री कृष्णा अयर भी हैं जिन्होंने इन्दिरा जी के आपात्काल के पूर्व इन्दिरा जी की मदद की थी। उस समय श्री अयर ने संविधान संशोधन के संसद के असीम अधिकारों पर प्रश्न नहीं उठाया। चूंकि श्री अयर वामपंथी विचारों के माने जाते हैं तथा सर्वविदित है कि वामपंथी लोग इन्दिरा जी की इमरजेन्सी के प्रशंसक थे। अन्य हस्ताक्षर कर्ता भी संविधान और न्यायापालिका को ही सर्वोच्च व्यवस्थापक मानकर तर्क दे रहे हैं जो ठीक नहीं। भारत की सम्पूर्ण समाज व्यवस्था में राजनैतिक संवैधानिक व्यवस्था के बढ़ते हस्तक्षेप और उसके दुष्परिणाम की इस वक्तव्य में न कोई चिन्ता है न ही समाधान। यह वक्तव्य यह भी प्रमाणित नहीं करता कि न्यायपालिका, संविधान और विधायिका वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था के ही अलग–अलग अंग हैं। इसके विपरीत यह वक्तव्य वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था को मजबूत करने का ही मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था भारत में श्रम के स्वाभाविक मूल्य को गिराकर तथा उसके सरकारी मूल्य को बढ़ाकर दो पकार के श्रम मूल्यों की योजना बनाती रही है जिससे समाज के श्रमजीवी और बुद्धिजीवी दोनों वर्ग स्वयं को उपकृत मानकर राजनैतिक व्यवस्था की जय जयकार करते रहें। बुद्धिजीवी पूंजीपति वर्ग इसलिये जय जय कार करेगा कि वर्तमान व्यवस्था ने श्रम की मांग को इतना कम करके रखा कि उसका मूल्य बुद्धि और धन की अपेक्षा बहुत कम बढ़े या नहीं बढ़े। दूसरी ओर श्रमजीवी इसलिये जय जय करेगा कि श्रम की मांग और मूल्य बहुत कम होते हुए भी राजनैतिक व्यवस्था ने कुछ अतिरिक्त सहायता करके उन्हें मरने से बचा लिया। उपरोक्त हस्ताक्षर कर्ताओं को संविधान, न्यायालय, कानून, सरकार आदि से उपर कुछ दिखता ही नहीं। यही कारण है कि

ये लोग वर्तमान व्यवस्था में श्रम की दुर्गति पर कोई मौलिक सोच प्रस्तुत न करके वही घिसीपिटी मूल्य वृद्धि की मांग रख रहे हैं। श्रम की वर्तमान स्थिति में दो प्रकार की श्रम मूल्य वृद्धि के प्रयास होते रहे हैं। ;1द्ध नरेगा के श्रम मूल्य वृद्धि के ;2द्ध कानून से श्रम मूल्य वृद्धि के। नरेगा में श्रम मूल्य वृद्धि से बाजार में श्रम का मूल्य भी बढ़ता है तथा मांग भी। श्रम की मांग बढ़ने से श्रम का मूल्य बढ़ना एक शुभ लक्षण है। मैं उपर लिखे विद्वानों की इस सद इच्छा से सहमत हूँ कि सरकार नरेगा का श्रम मूल्य एक सौ रूपया से बढ़ावें। ;3द्ध कानून से श्रम का मूल्य बढ़ाना घातक है क्योंकि कृत्रिम उर्जा का मूल्य कम बढ़े और श्रम का मूल्य उर्जा के अनुपात में ज्यादा बढ़े तो यह मूल्य वृद्धि श्रम की मांग को घटाती है। ऐसी मूल्य वृद्धि बाजार में बेरोजगारी बढ़ाती है तथा श्रम मूल्य को बढ़ने से रोकती है। दोनों श्रम मूल्यों में एक खतरनाक अन्तर है। पहली मूल्य वृद्धि पर सरकार रोजगार देने के लिए बाध्य है। दूसरी मूल्य वृद्धि में सरकार और समाज श्रम को मशीन में बदलने के लिये स्वतंत्र है। स्वाभाविक है कि श्रम मूल्य वृद्धि रोजगार को मशीनी उत्पादन की दिशा में स्थानान्तरित करेगी। हमारे ना समझ विद्वान दो प्रकार की श्रम मूल्य वृद्धि के विपरीत प्रभावों का फर्क न समझें तो बताइये कि दोष किसका?

हमारे विद्वान न्यायाधिपति अथवा अधिवक्ताओं को अपनी मांग रखने के पूर्व यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस मांग के पूरा होने से बढ़ने वाले खर्च के लिये इनके क्या सुझाव हैं। दुनिया जानती है कि भारत सरकार ऐसी मांग पूर्ति के बदले में या तो कृषि उत्पाद पर कर लगा देती है अथवा नये नोट छाप देती है। ये दोनों काम निहायत गुप्त होते हैं जिनमें मियां की जूती मियां का सर हो जाता है। नरेगा में श्रम मूल्य बढ़ाकर कृषि उत्पादों पर कर लगा दिया जाय तो बताइये कि ग्रामीण गरीब श्रमजीवी उत्पादक पर क्या प्रभाव पड़ेगा? सरकार का यह कदम कृषक और मजदूर को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा करके स्वयं बिचौलिया बनने में सहायक होता है। श्रम का मूल्य बाजार से अधिक बढ़ा दिया जाता है जो कृषक के लिये कठिनाई पैदा करता है। दूसरी ओर किसान के कृषि उत्पादन पर भारी कर लगा दिया जाता है जिससे वह मजदूर को उतनी मजदूरी देने लायक ही न रहे। इधर सरकार शेष बचे घाटे को पूरा करने के लिये चोरी से नोट छाप लेती है जो अन्त में मुद्रा स्फीर्ति के रूप में प्रगट होती है जिसे यही विद्वान मांगकर्ता मंहगाई कहकर मंहगाई घटाने की मांग करते रहते हैं। आश्चर्य होता है कि ये तथाकथित विद्वान कृषि उपज मूल्य वृद्धि का तो भरपूर विरोध करते हैं किन्तु कृषि उत्पादों पर टैक्स वृद्धि का विरोध कभी नहीं करते। दाल महंगी हो गई यह तो इन विद्वानों को पता है किन्तु दाल पर डेढ़ दो रूपया किलो तथा खाद्य तेल पर आठ रूपये किलो टैक्स है यह इन्हें या तो पता नहीं या ये लोग पता करना नहीं चाहते। स्वतंत्रता के बाद भारत में श्रम मूल्य में अस्सी प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है अर्थात् यदि सैंतालीस में श्रम मूल्य एक रूपया था तो उसी रूपये की तुलना में आज का श्रम मूल्य एक रूपया अस्सी पैसा हो गया। दूसरी ओर गेहूँ धान मक्का आदि के मूल्य बहुत घट गये। यदि उस समय गेहूँ का मूल्य तेंतीस पैसे प्रति किलो था तो आज घटकर सत्रह पैसा पतिकिलो हो गया। हम इन प्रस्ताव करने वाले न्यायाधीशों अथवा वकीलों को तो यह कहकर माफ कर सकते हैं कि इन्हें इतनी बारीकी का पता नहीं किन्तु हम भारत के उन अर्थशास्त्रियों के बारे में क्या सोंचे जो स्वयं को अर्थशास्त्री मानकर लम्बे चौड़े लेख भी लिखते रहते हैं तथा श्रम शास्त्र का इतना मामूली सिद्धान्त भी नहीं समझना चाहते।

मैने पिछले दिनों कई विद्वानों के लेख पढ़े। सबमें दो विपरीत मांगे एक साथ लिखी होती हैं ;1द्ध भारत में कृषि उत्पादन लगातार घटता जा रहा है जो चिन्ताजनक है ;2द्ध भारत में कृषि उत्पादां का मूल्य लगातार बढ़ता जा रहा है जो चिन्ताजनक है। ये दोनों निष्कर्ष प्रत्येक लेख मे एक साथ होते हैं और अन्त में एक सुझाव होता है कि कृषि उत्पादन भी बढ़ना चाहिये तथा कृषि उत्पाद मूल्य भी घटना चाहिये। मैंने इन लेखों को पढ़—पढ़ कर बहुत सोचा कि क्या यह संभव है? मुझे लगा कि बिल्कुल ही ना समझी भरे बेसिर पैर के सुझाव हैं? कृषि उत्पाद मूल्य घटेंगे तो उसका उत्पादन घटेगा ही । यह निश्चित है । सन 47 से आज तक कृषि उत्पादन मूल्य लगातार घटते गये। सन सतहत्तर में जब अटल जी की सरकार आयी तब जिस बेरहमी से शक्कर, गेहूँ, चावल को सस्ता किया गया वह आज तक मुझे याद है। मैं उस समय खेती पर ही आश्रित था। मैं उस समय भाजपा का जिला अध्यक्ष था। मैं एक तरफ तो सभाओं में मंहगाई खतम होने पर उपभोक्ताओं की वाहवाही लूटता था तो दूसरी ओर खेती में बढ़ रहे घाटे से भी चिन्तित रहता था। कुछ ही वर्षों बाद मैंने लुट पिटकर खेती बन्द कर दी। यदि मैं खेती बन्द करने की बुद्धिमानी नहीं करता तो मेरे परिवार में मैं अपनी मूर्खता का इतिहास बना देता। मैं जानता हूँ कि आज भी मेरे परिवार के लोग भाजपा की उस नीति का गुणगान करते रहते हैं कि सरकार ने सभी वस्तुओं को बहुत सस्ता कर दिया था। उन बेचारों को क्या पता कि उस सस्ती ने मुझ जैसे हजारों किसानों को खेती छोड़ने पर मजबूर कर दिया। आज तक सरकार कृषि उत्पादों की मूल्य वृद्धि को विपरीत दिशा

में ले जाकर उसे सस्ता कर रही है। यदि मुद्रा स्फीति नौ प्रतिशत है तो धान गेहूँ आदि कृषि उत्पादों का मूल्य छः सात प्रतिशत बढ़ाकर सरकार किसानों के साथ छल करती रहती है। डीजल पेट्रोल की मूल्य वृद्धि तो उससे भी कम चार पांच प्रतिशत तक ही सीमित रखती है जबकि कृषि उत्पादों पर लगने वाला उसका टैक्स अपने आप मूल्यानुसार बढ़ता रहता है। बिना हो हल्ला के इस वर्ष वेट का कर पच्चीस प्रतिशत बढ़ाकर चार से पांच कर दिया गया और न इस घपले को गड़करी समझ पाये न ही प्रकाश करात ।

सीधी सी बात है कि उत्पादन वृद्धि के लिये मूल्य वृद्धि करनी ही हागी। यह मूल्य वृद्धि भी ज्यादा करनी होगी। जब ज्यादा मूल्य वृद्धि होगी तब कृषि उत्पादन बढ़ेगा और जब कृषि उत्पादन बढ़ेगा तब कृषि उत्पादों के मूल्य घटेंगे। इसके अलावा कोई अन्य उपाय नहीं है। यदि कोई अन्य उपाय है तो कोई अर्थशास्त्री वह उपाय बताता क्यों नहीं? स्वाभाविक है कि उनके पास कोई उपाय तो है नहीं और लेख लिखना उनकी मजबूरी है क्योंकि बहुतों का तो व्यवसाय ही आंदोलन चलाना या संगठन बनाना अथवा लेख लिखना है। फिर भी मेरी इच्छा है कि आंदोलन कारी, एन0जी0ओ0 अथवा व्यवसायी लेखक चाहे जो लिखें किन्तु सम्मानित पूर्व न्यायाधीश अथवा अधिवक्ताओं को आर्थिक विषयों पर कोई गंभीर सुझाव देने के पूर्व कई बार सोचना चाहिये। नरेगा में श्रम मूल्य बढ़ना ही चाहिये। किन्तु साथ साथ यह बात भी जुड़ी होनी चाहिये कि किसी भी स्थिति में कृषि उपज पर टैक्स बढ़ाकर उसकी भरपाई नहीं की जायगी। गांधी जी ने कहा था कि हमें अपनी सुविधाओं की तुलना करते समय समाज के न्यूनतम सुविधा प्राप्त व्यक्ति की स्थिति का भी ध्यान रखना चाहिये। इसी तरह मेरा सुझाव है कि हमें किसी भी प्रकार की आर्थिक नीति बनाते समय ''गरीब ग्रामीण श्रमजीवी किसान'' इन चारों की मिली जुलो स्थिति का भी ध्यान रखना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारी पूरी की पूरी अर्थव्यवस्था मध्यवर्ग शहरी बुद्धिजीवी उपभोक्ता को ध्यान में रखकर बनाई जा रही है जो पूरी तरह गलत है। इसे बदलने की जरूरत है। हमारे खुला पत्र लेखक न्यायाधीशों तथा अधिवक्ताओं को अपने पत्र पर दुबारा विचार करना चाहिये और मांग के साथ–साथ सुझाव भी देने चाहिये। इस पत्र मे सुप्रीम कोर्ट के कुछ निर्देशो का जिस प्रकार बेरहमी से उपयोग किया गया है वह भी सुझाव कर्ताओ की सोच को दर्शाता है। ऐसा लगता है जैसे कि सुप्रीम कोर्ट ही एक मात्र सारी स्थिति को समझता है। पूर्व न्यायाधीश अब न्यायाधीश और न ही वे किसी कानून की समीक्षा कर रहे है। वे सामाजिक समस्या की समीक्षा कर रहे है तो उन्हे सामाजिक संदर्भो का भी ध्यान रखना चाहिये। हर लाइन मे कही न कही सुप्रीम कोर्ट के आदेश का उल्लेख कोई अच्छी परंपरा नही है।

उत्तरार्ध

ग्राम स्वराज्य–लोक स्वराज्य व्यवहार में

अविनाश चन्द्र

जब हम समाज की बुनियादी एवं सबसे निचली इकाई गांव में, क्रांतिकारी उत्प्रेरक लोगो के समक्ष ग्राम स्वराज्य का विचार रखेंगे, उसे असली जामा पहचाने के प्रयास करेंगें और लोग स्वयं भी उस दिशा में सोचने –समझने और कार्य करने के लिए प्रेरित हेांगे, तो सारे देश में एक ही शैली के ग्राम स्वराज, गांधी–विनोबा–जेपी के शब्दों में वर्णित ग्राम स्वराज्य से थोड़ा–बहुत हटकर चीजें सामने आएंगी। हालांकि लक्ष्य सभी को एक जैसा स्वीकार हो सकेगा, लेकिन वहां तक पहुंचने के रास्तों में,अलग– अलग जगहों के प्रयोगों में काफी भिन्नता दिखेगी। हमने अपने एक पिछले लेख 'लोक स्वराज्यः सिद्धांत और व्यवहार में' ग्राम स्वराज्य का मोटे रूप में एक आदर्श खाका खींचा है, लेकिन एक क्षेत्र में व्यवहार में ग्राम स्वराज्य किस रूप में प्रकट हो सकता है, उसका भी वर्णन उस लेख में किया है ।

अब हम जिला सरगुजा ;छत्तीसगढ़द्ध के विकास खंड रामचन्द्रपुर की कुछ पंचायतों का, वहां गांधी–विनोबा की कल्पना के ग्राम स्वराज्य का आदर्श स्वीकारते हुए, वहां के नेतृत्व द्वारा गढ़े जा रहे व्यावहारिक स्वरूप का वर्णन करेंगे। इन प्रयोगो में वहां के कर्णधारों ने उस दिशा में अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर अपनी सामर्थ्य के आधार पर, प्रथम चरण में कुछ खास–खास मुद्दों से शुरूआत करने का निश्चय किया है।

अभी वहां के कर्णधारों ने पांच मुद्दों को लेकर ही उस दिशा में आगे बढ़ने का निर्णय किया है। इस अभियान को नाम दिया गया है–'ग्राम सभा सशक्तिकरण अभियान'। ग्राम सभा को सशक्त करने हेतु वे मुद्दे ये हैं–;1द्ध प्रशासन तथा गामीण जनता के बीच दूरी कमशः घटती जाय, यानी ग्रामसभा अपनी पंचायत के प्रतिनिधियों प्रशासकों एवं कर्मचारियों से रू–ब–रू होना सीखे। ;2द्ध अहिंसक समाज रचना, ;3द्ध वर्ग–संघर्ष नही, वर्गों का समन्वय करते हुए आगे बढ़ना, गांवों को टूटने से रोकना, ;4द्ध पंचायता में भ्रष्टाचार अब नहीं हेाने देना। अब किसी को पैसा खाने

नहीं देंगे पंचायत में। ;5द्ध ग्रामीण जनता आदिवासी है, गांव गरीबी में जी रहे हैं तो ग्रामसभा प्रस्ताव पारित करे कि सरकार हमारे प्रखंड के गांवों से पांच साल तक किसी भी प्रकार टैक्स नहीं लेवे।

इन बातों पर आगे बढ़ते हुए वहां के नेतृत्व ने रणनीति बनाई हैद्य वह सामान्य से थोडा अलग है। वहां के नेतृत्व तथा साथियों ने एक माह तक विकास खंड के 130 गांवों का दौरा किया और प्रत्येक गांव में कुछ प्रारंभिक कदम भी उठाए। इन गांवों में सभा बुलाई गई और लोगों से पूछा गया कि उनके गांव में सबसे शरीफ व्यक्ति कौन है? ऐसा व्यक्ति जो लंद–फंद में न हो, गलत काम न करता हो, भले ही निष्क्रिय रहता हो, बेईमानी के तौर तरीकों का प्रतिकार भी न करता हो । ऐसे व्यक्तियों का नाम लोगों ने बताया। गांव वालों को बताया गया कि इस व्यक्ति को करना कुछ नहीं है। उससे यह अपेक्षा भी नहीं करनी है कि वह अच्छे कामों के प्रति सक्रिय हो और अच्छा काम करने की हिम्मत करने वालों की हिम्मत बढ़ाए, उन्हें प्रेरित करे। उसे जरा भी तकलीफ नहीं देनी है। लेकिन उसका सम्मान करना चाहिए। आज के जमाने में शरीफ माने जाने वाले लोगों को लोग मूर्ख ही कहते हैं, तो अब धारा थोड़ा उल्टी की जाय और जमाने के विपरीत हम शरीफ माने जाने वाले साथी को इज्जत देना तो शुरू करें। इस कम में यह भी किया गया कि सभा में जहां नेतृत्व वर्ग कुर्सियों पर बैठा होता था, उन्हीं के समकक्ष एक और कुर्सी डलवाकर उस शरीफ व्यक्ति को सम्मान के साथ बिठाया गया। यह भी सोचा गया कि ग्रामसभा की बैठक उसी के दरवाजे पर हों तो अच्छा। यह सब एक संकेत मात्र है, प्रतीक मात्र है कि अब हम धारा को बदलेंगे और शरीफ को सम्मान देना शुरू करेंगे। ऐसे व्यक्ति को ग्रामप्रमुख या ग्राम देवता के नाम से सम्मानित किया गया।

फिर उसी सभा में गांव वालों से पूछा जाता था कि इस गांव में वे कौन लोग हैं जो बहुत चालाक हैं, जुझारू हैं, लड़ाकू हैं या कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। ऐसे 10–20–22 लोगों के नाम सामने आते थे। इनको लोकपंच कहा गया। इन 20–22 लोगों के समूह को लोक पंचायत कहा गया और लोक पंचायत के इन 20–22 लोक पंचों को संयोजन करने वाले को लोक प्रमुख कहा गया, लेकिन ग्राम पंचायत के होते हुए ये लोक पंचायत कैसी? क्या कोई टकराव होने वाला है? बिल्कुल नहीं। ये लोक पंच इसलिए कहलाए, क्योंकि ग्राम सभा ने या गांव के लोगों ने अपनी बैठक में स्वयं उन्हें मान्यता दी उनके नाम सुझाए। वे स्वयं खड़े नहीं हुए और गांव वालों से यह नहीं कहा कि हम भी हैं, हमें चुनों हम तुम्हारी सेवा करेंगे। जबकि ग्राम पंचायत में लोग खड़े होते प्रचार करते और वोट मांगते हैं। लोक पंचों को ग्राम की बैठक ने, ग्राम सभा ने, लोक ने प्रत्यक्ष चुना, इसलिए उन्हें लोक पंच कहा गया।

तो यह लोक पंच करेंगे क्या? बताया गया कि जैसी उनकी क्षमता है, उसको देखते हुए वे अब से गांव में किसी प्रकार का भ्रष्टाचार नहीं होने देंगे, अब किसी का पैसा नहीं खाने देंगे। सभा में लोक पंचों ने इसे स्वीकार कर लिया। तो यह क्या बात हुई? चंद–चालाक–लड़ाकू समझे जाने वाले साथियों से हम भ्रष्टाचार रोकने की बात करने लगे हैं। क्या यह कांटे से कांटा निकालने या लोहे को लोहे ही काटता है, इस कहावत को चरितार्थ करने की बात सोचते हैं? नहीं, वैसा बिल्कुल नहीं है। हम जानते ही हैं कि कोई भी व्यक्ति न पूरी तरह दुर्जन होता है और न पूरी तरह ईमानदार। हर मनुष्य अच्छाई और बुराई का मिश्रण ही होता है। हम एक दूसरे नजरिये से भी देखें। जब कोई बदमाश युवक निठल्ला फिरता रहता है, कोई काम जिम्मेदारी से नहीं करता तो कहा जाता है कि उसकी शादी कर दो। सब ठीक हो जाएगा। और अक्सर ठीक हो भी जाता है, जिम्मेदारी का बोझ पड़ने से। तो यह आशा की जा सकती है कि जब बदमाश लोग, बुरे कहे जाने वाले लोग, कोई पवित्र काम करने का जिम्मा अपने सर पर ले लेते हैं, तो वैसा करने में, यदि वे करते हैं, वे सुधर भी सकते हैं। सोच को सकारात्मक रखने से ऐसा हो भी सकता है। जब कोई शराबी व्यक्ति पवित्र खादी वस्त्र पहनना शुरू कर दे तो ऐसा ही सोचना ठीक नहीं है कि उस व्यक्ति के तन पर चढ़कर खादी अपवित्र हो रही है, बल्कि सोचने का एक ढंग यह भी है कि देखो शराबी व्यक्ति एक कदम तो आगे बढ़ा नेक राह में कि उसने खादी जैसी पवित्र पोशाक पहनना शुरू किया है, आगे वह और भी कदम नेकी के उठा सकता है।

फिर इन लोक पंचों को निठल्ले घूमकर कुछ भी काम स्वतंत्र रूप से करने की बात नहीं कही गई है। उन्हें ग्रामसभा से बांधा भी गया है। वे जो कुछ करेंगे, ग्राम सभा को या गांव के लोगों को विश्वास में लेकर ही करेंगे। वे स्वतंत्र नहीं है। ग्राम सभा ने गांव के लोगों ने उन्हें माना है, तो ग्राम सभा ही प्रमुख है, ग्राम सभा ही सबकी 'मां' है, उनकी भी है। ऐसा मानने में कुछ भी गलत नहीं दिखता है कि ग्रामसभा के अंकुश में रहकर वे चालाक–लड़ाकू लोग भी गांव के हित में काम करने वाले गांव के रखवाले बन सकते हैं।

यह सारा सोच, रामानुजगंज, सरगुजा ;छत्तीसगढ़द्ध के एक चिन्तनशील साथी, जिनसे सर्वोदय वाले अधिकांश लोग परिचित ही हैं, श्री बजरंगलाल अग्रवाल का है। उनके जीवन में अनुभवों से यह निकला है, लेकिन जो दूसरे चिन्ता के सोच और अनुभवों से भिन्न है ही। इतना तो हम 'गीता' के संदेश से जानते ही हैं कि कोई भी व्यक्ति

अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर चलने से ही 'स्वधर्म' की पटरी पर आ सकता है और स्वधर्म पर चलना ही ; परधर्म पर चलना नहीं भले ही वह कितना भी आकर्षक क्यों न मालूम होता हो द्ध जीवन के विकास का सच्चा सूत्र है। हर एक के जीवन के अनुभव अलग–अलग हो सकते हैं, हरेक को सच की खोज में उन्हीं अनुभवों पर चलना चाहिए, गलती होगी, तो सुधारने के पूरे मौके रहेंगे ही।

देव, दानव और मानव तीनों प्रजापति ब्रह्मा के पास उपदेश लेने पहुंचे। ब्रह्मा ने एक ही अक्षर बोला–'द'। तीनों सोचने लगे कि इसका अर्थ क्या हुआ? अपने–अपने जीवन के अनुभवों से तीनों ने सोचा। देवों ने समझा कि 'द' कर अर्थ 'दमन' होना चाहिए, क्योंकि हम बहुत विलासतापूर्ण ढंग से जी रहे हैं, जो ठीक नहीं है, सो ब्रह्मा का उपदेश है 'दमन' करना अपनी इंद्रियों का। इसी प्रकार दानवों ने सोचा कि हम बहुत क्रूर हो गए हैं, ब्रह्मा 'द' अक्षर से हमें संदेश दे रहे हैं कि 'दया करो'। मानव ने सोचा कि हम अनर्गल बहुत खर्च कर रहे हैं, दूसरों को लूट रहे हैं, तो ब्रह्मा हमें 'द' के अक्षर से 'दान' करने का संदेश देना चाहते हैं। तीनों ने अपनी–अपनी समझ ब्रह्मा को बताई तो ब्रह्मा ने तीनों अर्थों को सही माना, क्योंकि वे अर्थ हरेक के जीवन के अनुभवों से निकले थे। अतः अपने कर्तव्य की, धर्म की समझ, अपने जीवन की अनुभूतियों, अनुभवों के आधार पर ही सही एवं सुखद होती है।

श्री बजरंगलाल तथा उनके साथियों ने महीने–डेढ़ महीने की रामचन्द्रपुर विकास खंड के गांवों की यात्रा में दस–दस गांवों का एक–एक केन्द्र माना है और इसके प्रभारी को केन्द्र प्रमुख कहा गया है जो केन्द्र के दस गांवों के लोक प्रमुखों का संयोजन करेगा। दस गांवों की ऐसी एक–दो सभा में शामिल होने और अपने विचार रखने का भी हमें अवसर मिला। उसमें खास बात यह दिखी कि सभी ग्राम देवताओं/ग्रामप्रमुखों को मंच पर बैठे नेतृत्व वर्ग के साथ कुर्सियों पर बिठाया गया और उन्हें टोपियां पहनाकर सम्मानित किया गया। दस गांवों के लोगों ने अपने–अपने विचार भी रखे। तो यह स्पष्ट है कि ग्रामसभा सशक्तिकरण के काम को आगे बढ़ाने के लिए, श्री बजरंगलाल तथा साथियों द्वारा महीने डेढ़ महीने की की गई यात्राओं यानी पूर्व तैयारी के माध्यम से एक पृष्ठभूमि तो तैयार कर ही ली गई है, 130 गांवों में कुछ संगठनात्मक शुरूआत करके। शेष गांवों में भी यात्राएं होने वाली हैं और अब एक विकास खंड रामचन्द्रपुर के साथ दूसरा विकास खंड वाडफनगर भी इन प्रयोगों के लिए लिया जाना है।

हमें 18 अप्रैल से 20 मई 11 तक 32 दिनों तक गांवों में भ्रमण करने का अवसर मिला, जहां हमने ग्रामस्वराज्य, ग्रामसभा सशक्तिकरण आदि के विचारों को पूरा समय लेकर विस्तार से समझाया। हम सबेरे 11 बजे बोलेरो गाड़ी पर निकलते थे और शाम को 5 बजे तक अपने निवास पर वापस आ जाते थे। प्रायः सभी गांवों में आदिवासियों की संख्या ही अधिक थी। हमारी बैठकें पंचायत भवन में या किसी घने पेड़ की छाया के तले होती थी। सभी गांव जंगल और पहाड़ों के बीचोबीच में ही थे। रामचन्द्रपुर विकास खंड के जिन गांवों में ;पंचायतों में, क्योंकि एक पंचायत में प्रायः एक ही गांव है द्ध हमारी यात्रा चली, वे गांव हैं–पलगी, चलखी, नवाडीह, मर्मा, बसेरा, बेलकुर्ता, गाजर, नेउरगंज, अन्नपारा, गम्हरिया, चाकी, महावीरगंज, चुमरा, धर्मी, लोधा, छतरपुर, इन्द्रपुरखोरी, शिवपुर, चिनियां, हरिहरपुर, अनिरुद्धपुर, कलिकापुर, आबादी, रामचन्द्रपुर, रामपुर एवं कनकपुर।

भारत की संसद कानून बनाती है तो कार्यपालिका ; सरकार द्ध को उसे लागू करना होता है, प्रदेश की विधानसभा कानून बनाती है तो कार्यपालिका ; सरकार द्ध को उसे लागू करना होता है। यह दुखद है कि आजादी के 63 साल बीतने के बाद भी ऐसी बात गांव के लिए नहीं की गई, यानी उसी तरह ग्रामसभा अपने गांवों की जरूरतों से संबद्ध, गांव के शासन–प्रशासन से संबद्ध कानून बनाए और तब उस कानून का कियान्वयन ग्रामपंचायत करे, ताकि संविधान में दर्ज 'राज्य के निर्देशक सिद्धांतों' की धारा 40 के तहत गांवों को 'स्वशासन की एक इकाई' के रूप में विकसित होने का मौका मिल सके। संसद और विधान सभा की भांति ग्रामसभा को भी विधायी ; कानून बनाने की द्ध शक्ति मिल सके, यह बात भी ग्रामसभाओं को बताई जाती रही। उस दिशा में वे आंदोलनरत हों, ऐसी प्रेरणा उन्हें दी जाती रही। सर्व सेवा संघ के माध्यम से ग्राम सभा के सशक्तिकरण का कार्य तो देश के अनेक भागों में प्रायः 40 वर्षों से चलता रहा है, लेकिन तब संविधान में ग्राम सभा को मान्यता नहीं थी। अब ग्रामसभा को संवैधानिक दर्जा मिल जाने से लोग ग्रामसभा को सशक्त करने हेतु ज्यादा जोश से आगे बढ़ सकते हैं, ऐसी आशा की जा सकती है।

ग्राम सभा में वर्गों की टकराहट न होकर वर्ग–समन्वय से काम चले, इस बात पर जोर दिया गया है। लेकिन लोकपंचों के तेज व जुझारू मिजाज के कारण भ्रष्टाचार रोकने के कम में, उनकी वाणी में कुछ कठोरता की आशंका हो सकती है लेकिन ग्रामसभा के लिए कोई भी कृति करने से पहले ग्रामसभा या गांव की सहमति लेना व उन्हें विश्वास में लेना अनिवार्य होने से अशुभ खतरा टलेगा और इसके विपरीत लोकपंचों के व्यक्तित्व के विकास के अवसर प्रकट होने की संभावना बलवती होगी।

32 दिनों को यात्रा में हमारा उद्देश्य प्रत्येक गांव में सिर्फ लोकपंचों ; ग्रामप्रमुख व लोक प्रमुख सहित द्ध से बात करना, उन्हें प्रेरित करना था ताकि वे अपने संकल्प 'अब पंचायत में किसी को पैसा खाने नहीं देंगे, ग्रामसभा की बैठकें सही ढंग करवाते रहेंगे' आदि को पुनः ध्यान दें और उस ओर सकिय हों, सो उन्होंने पुनः आश्वासन तो दिया ही है। शदियों के कारण उपस्थिति कम रहती थी और लोकपंचों के साथ अन्य ग्रामवासी भी आ जाते थे लेकिन फिर भी उनसे पूरी की पूरी बात होती थी, उनके प्रश्नों के उत्तर भी दिए जाते थे। उनसे बिदा लेते समय हम गांव के हर उपस्थित साथी से गले मिलते थे, ताकि उन्हें हार्दिकता का दर्शन हो और वह उन्हें होता भी था।

21 मई 11 को हम वाराणसी लौटे। जून में कुछ दिनों के लिए तथा जुलाई में 1–15 तक हमें वहां पुनः जाना पड़ सकता है, क्योंकि बुलाहट है ही। अगस्त–सितंबर–अक्टूबर के तीन महीनों में उत्तर प्रदेश के बागपत, मेरठ तथा गाजियाबाद जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में यात्राएं होने की संभावना है। लोकस्वराज्य संघ के साथी वहां आयोजन कर रहे हैं। 6 टोलियां बनेंगी। तीन मुद्दों–;1द्ध अपने प्रतिनिधि को वापस बुलाने का अधिकार ; राइट टू रिकॉल द्ध, ;2द्ध गांवों की स्वायत्तता ; ग्रामस्वराज्य द्ध तथा ;3द्ध देश के प्रत्येक व्यक्ति को रुपये दो हजार प्रतिमाह जीवन–निर्वाह भत्ता पर जोर रहेगा।

ग्रामीण क्षेत्रों में चर्चा के आधार पर यह सूत्र सामने आया जिसे लोकपंचों ने भी स्वीकार किया कि ग्रामसभा की बैठक हो या न हो, ग्रामसभा में एकता बने या न बने, यह दूसरे नंबर की चीज है, पहले नंबर की चीज यह है कि गांवों में 15–20 जो भी लोकपंच हों, उनमें पारस्परिकता, एकजुटता दिखाई दे, तभी तो वे ऐसा माध्यम बन सकेंगे कि ग्रामसभा की बैठक बुला सकें और उसमें पारस्परिकता के भाव पैदा कर सकें। इसके लिए यह बात सामने आई कि वे सभी भेदभाव भुलाकर 15–20 दिनों में एक बार अवश्य एकत्र हों और अपने में एकजुटता बनाए रखने के लिए ;1द्ध गांव के किसी भाग की सामूहिक सफाई, ;2द्ध अपने–अपने घरों से अल्पाहार लाकर एक साथ जलपान, ;3द्धसामूहिक संगीत, भजन, स्वाध्याय आदि करें और ;4द्धछिटपुट नीति, अनीति के बारे में गांव के लोगों से संपर्क बनाए रखें। ऐसे कदमों से उनका गांव पर असर होगा और वे ग्राम बैठकें कर सकेंगे।

एक दूसरी महत्वपूर्ण बात गांवों में चर्चा के दौरान उभर कर आई कि मान लीजिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण पर्याप्त मात्रा में हो जाय और गांवों को कानून बनाने के एवं शासन–प्रशासन के अधिकार मिल भी जायें, काम करने के लिए धन भी पर्याप्त मात्रा में मिल जाये ; आज भी अनेक योजनाओं के नाम पर कम धन नहीं आ रहा है गांव में, लेकिन उसका दुरुपयोग ही काफी हो रहा है द्ध तो क्या इससे गांव में परस्पर की छीनाझपटी बंद हो जाएगी? स्पष्ट उत्तर आया कि 'नहीं'। उत्तर आया कि लेने से नहीं, देने से एकता एवं पारस्परिकता बनती है। तो देना क्या? कुछ न दें तो अपना प्यार, अपनी हमदर्दी अपने पड़ोसी को दें, एक दूसरे के सुख–दुख में शरीक हों और संभव हो सके तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी हैसियत के अनुसार कुछ न कुछ दान देकर ग्राम कोष खड़ा करे, जो सबके काम आ सकेगा। यदि सरकारी योजनाओं के निमित्त सरकार कुबेर का भंडार भी गांव में उडेल दे और हम सिर्फ इसी के लिए पागल रहें तो लालच बढ़ेगा और गांव टूटेगा। गांव को एक बनाए रखने के लिए हमें लेने से पहले या लेने के साथ–साथ कुछ देना ; कुछ भी द्ध सीखना होगा।

ग्राम सभा सशक्तिकरण के माध्यम से देश में एक नया समाज, नई सभ्यता, नई संस्कृति का प्रारंभ हो सकता है यदि गांव के लोगों की, गांव के कर्णधारो की हम दृष्टि बदल सकें, यानी यदि हम उन्हें यह समझा सकें कि गांव अपने श्रम, परस्पर सहकार और अपने स्थानीय संसाधनों से वह सभी कुछ पा सकता है, जो पाने योग्य है, जो जीवन के लिए उपयोगी है, और इस तरह नीचे से सच्ची आजादी–ग्राम स्वराज्य की स्थापना कर सकता है। हमारे पास अपना कोई बना–बनाया नेटवर्क देश के गांवों के स्तर पर नहीं है, लेकिन पंचायतराज अधिनियम के तहत यह ढांचा सभी गांवों में मौजूद है। हम इसका युक्तिपूर्वक उपयोग करके ग्रामसभा सशक्तिकरण करके उस नई सभ्यता को नीचे से जन्म दे सकते हैं, जिसका उल्लेख गांधी ने 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक में किया है।

मेरा शेष जीवन अपने स्वधर्मानुसार लोकस्वराज्य, ग्रामस्वराज्य के लिए पूर्ण समर्पित है, जहां भी इसकी संभावना हमें दिखेगी, वहां हम पहुंचने का प्रयोग करंगे।

; अनुभवों के आधार पर द्ध